

# आवश्यकसूत्र पर व्याख्यासाहित्य

आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि जी म. सा.

आवश्यकसूत्र पर आवश्यकनिर्युक्ति, विशेषावश्यक भाष्य, हारिभट्टीयवृत्ति एवं मलधारी हेमचन्द्र द्वारा रचित टिप्पणक व शिष्यहितावृत्ति आदि प्रमुख व्याख्याएँ हैं। आचार्यप्रवर श्री देवेन्द्रमुनि जी म.सा. ने आगम समिति से प्रकाशित आवश्यक सूत्र की भूमिका में इन व्याख्याओं का परिचय दिया था। उसे यहाँ उपयोगी समझकर उद्धृत किया गया है। -सम्पादक

आवश्यकसूत्र एक ऐसा महत्त्वपूर्ण सूत्र है कि जिस पर सबसे अधिक व्याख्याएँ लिखी गयी हैं। इसके मुख्य व्याख्याग्रन्थ हैं- निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, स्तबक (टब्बा) और हिन्दी विवेचन।

## आवश्यकनिर्युक्ति

आगमों पर दस निर्युक्तियाँ प्राप्त हैं। उन दस निर्युक्तियों में प्रथम निर्युक्ति का नाम आवश्यकनिर्युक्ति है। आवश्यकनिर्युक्ति में अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है। अन्य निर्युक्तियों को समझने के लिये आवश्यकनिर्युक्ति को समझना आवश्यक है। इसमें सर्वप्रथम उपोद्घात है, जो भूमिका के रूप में है तथा उसमें ८८० गाथाएँ हैं। प्रथम पाँच ज्ञानों का विस्तार से निरूपण है।

ज्ञान के वर्णन के पश्चात् निर्युक्ति में षडावश्यक का निरूपण है। उसमें सर्वप्रथम सामायिक है। चारित्र का प्रारम्भ ही सामायिक से होता है। मुक्ति के लिये ज्ञान और चारित्र ये दोनों आवश्यक हैं। सामायिक का अधिकारी श्रुतज्ञानी होता है। वह क्षय, उपशम, क्षयोपशम कर केवलज्ञान और मोक्ष को प्राप्त करता है। सामायिकश्रुत का अधिकारी ही तीर्थंकर जैसे गौरवशाली पद को प्राप्त करता है। तीर्थंकर केवलज्ञान होने के पश्चात् जिस श्रुत का उपदेश करते हैं- वही जिनप्रवचन है। उस पर विस्तार से चिन्तन करने के पश्चात् सामायिक पर उद्देश्य, निर्देश, निर्गम आदि २६ द्वारों से विवेचन किया गया है। मिथ्यात्व का निर्गमन किस प्रकार किया जाता है, इस प्रश्न पर चिन्तन करते हुए निर्युक्तिकार ने महावीर के पूर्वभवों का वर्णन, उसमें कुलकरोँ की चर्या, भगवान् ऋषभदेव का जीवन-परिचय आदि विस्तृत रूप से दिया है। निहवों का भी निरूपण है।

सामायिक सूत्र के प्रारम्भ में नमस्कार महामंत्र आता है। इसलिये नमस्कार मंत्र की उत्पत्ति, निक्षेप, पद, पदार्थ, प्ररूपणा, वस्तु, आक्षेप, प्रसिद्धि, क्रम, प्रयोजन और फल- इन ग्यारह दृष्टियों से नमस्कार महामंत्र पर चिन्तन किया गया है जो साधक के लिये बहुत ही उपयोगी है।

दूसरा अध्ययन चतुर्विंशतिस्तव का है। इसमें नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन छह निक्षेपों की दृष्टि से प्रकाश डाला गया है।

तृतीय अध्ययन वन्दना का है। चितिकर्म, कृतिकर्म, पूजाकर्म और विनयकर्म, ये वन्दना के पर्यायवाची हैं। वन्दना किसे करनी चाहिये? किसके द्वारा होनी चाहिये? कब होनी चाहिये? कितनी बार होनी चाहिये? कितनी बार सिर झुकना चाहिये? कितने आवश्यकों से शुद्धि होनी चाहिये? कितने दोषों से मुक्ति होनी चाहिये? वन्दना किसलिये करनी चाहिये? प्रभृति नौ बातों पर विचार किया गया है। वही श्रमण वन्दनीय है जिसका आचार उत्कृष्ट है और विचार निर्मल है। जिस समय वह प्रशान्त, आश्वस्त और उपशान्त हो, उसी समय वन्दना करनी चाहिये।

चतुर्थ अध्ययन का नाम प्रतिक्रमण है। प्रमाद के कारण आत्मभाव से जो आत्मा मिथ्यात्व आदि परस्थान में जाता है, उसका पुनः अपने स्थान में आना प्रतिक्रमण है। प्रतिचरणा, परिहरणा, वारणा, निवृत्ति, निन्दा, गर्हा, शुद्धि- ये प्रतिक्रमण के पर्यायवाची हैं। इनके अर्थ को समझाने के लिये निर्युक्ति में अनेक दृष्टान्त दिये गये हैं। नागदत्त आदि की कथाएँ दी गई हैं। इसके पश्चात् आलोचना, निरपलाप, आपत्ति, दृढधर्मता आदि ३२ योगों का संग्रह किया गया है और उन्हें समझाने के लिये महागिरि, स्थूलभद्र, धर्मघोष, सुरेन्द्रदत्त, वारत्तक, वैद्य धन्वन्तरि, करकण्डु, आर्य पुष्पभूति आदि के उदाहरण भी दिये गये हैं। साथ ही स्वाध्याय-अस्वाध्याय के संबंध में भी प्रकाश डाला गया है।

पाँचवें अध्ययन में कायोत्सर्ग का निरूपण है। कायोत्सर्ग और व्युत्सर्ग ये एकार्थवाची हैं। कुछ दोष आलोचना से ठीक होते हैं तो कुछ दोष प्रतिक्रमण से और कुछ दोष कायोत्सर्ग से ठीक होते हैं। कायोत्सर्ग से देह और बुद्धि की जड़ता मिटती है। सुख-दुःख को सहन करने की क्षमता समुत्पन्न होती है। उसमें अनित्य, अशरण आदि द्वादश अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन होता है। मन की चंचलता नष्ट होकर शुभ ध्यान का अभ्यास निरन्तर बढ़ता है। ध्यान और कायोत्सर्ग के संबंध में अनेक प्रकार की जानकारी दी गई है जो ज्ञानवर्द्धक है। श्रमण को अपने सामर्थ्य के अनुसार कायोत्सर्ग करना चाहिये। शक्ति से अधिक समय तक कायोत्सर्ग करने से अनेक प्रकार के दोष समुत्पन्न हो सकते हैं। कायोत्सर्ग के समय कपटपूर्वक निद्रा लेना, सूत्र और अर्थ की प्रतिपृच्छा करना, काँटा निकालना, लघुशंका आदि करने के लिये चले जाना उचित नहीं है। इससे उस कार्य के प्रति उपेक्षा प्रकट होती है। कायोत्सर्ग के घोटक आदि १९ दोष भी बताए हैं। जो देहबुद्धि से परे है, वही व्यक्ति कायोत्सर्ग का सच्चा अधिकारी है।

छठे अध्ययन प्रत्याख्यान का प्रत्याख्यान, प्रत्याख्याता, प्रत्याख्येय, पर्षद, कथनविधि और फल, इन छह दृष्टियों से विवेचन किया गया है। प्रत्याख्यान के नाम, स्थापना, द्रव्य, अदित्सा, प्रतिषेध और भाव, ये छह प्रकार हैं। प्रत्याख्यान की विशुद्धि श्रद्धा, ज्ञान, विनय, अनुभाषणा, अनुपालन और भाव- इन छह प्रकार से होती है। प्रत्याख्यान से आस्रव का निरुन्धन होता है। समता की सरिता में अवगाहन किया जाता है।

चारित्र की आराधना करने से कर्मों की निर्जरा होती है। अपूर्वकरण कर क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होकर केवलज्ञान प्राप्त होता है और अन्त में मोक्ष का अव्याबाध सुख मिलता है। प्रत्याख्यान का अधिकारी वही साधक है जो विक्षिप्त और अविनीत न हो।

आवश्यकनिर्युक्ति में श्रमण जीवन को तेजस्वी-वर्चस्वी बनाने वाले जितने भी नियमोपनियम हैं, उन सबकी चर्चा विस्तार से की गई है। प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों का प्रतिपादन भी इस निर्युक्ति में हुआ है। प्रस्तुत निर्युक्ति के रचयिता आचार्य भद्रबाहु हैं।

### विशेषावश्यक भाष्य

निर्युक्तियों के गम्भीर रहस्यों को प्रकट करने के लिये विस्तार से प्राकृत भाषा में जो पद्यात्मक व्याख्याएँ लिखी गईं, वे भाष्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। भाष्य में अनेक स्थलों पर मागधी और शौरसेनी के प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। मुख्य छन्द आर्या है। भाष्य साहित्य में अनेक प्राचीन अनुश्रुतियों, लौकिक कथाओं और परम्परागत श्रमणों के आचार-विचार की विधियों का प्रतिपादन है।

भाष्यकार जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण का नाम जैन इतिहास में गौरव के साथ उद्धृत है। आवश्यकसूत्र पर उन्होंने विशेषावश्यकभाष्य की रचना की। आवश्यकसूत्र पर तीन भाष्य लिखे गए हैं- १. मूलभाष्य २. भाष्य और ३. विशेषावश्यकभाष्य। पहले के दो भाष्य बहुत ही संक्षेप में लिखे गये हैं। उनकी बहुत सी गाथाएँ विशेषावश्यकभाष्य में मिल गई हैं। इसलिये विशेषावश्यकभाष्य दोनों भाष्यों का भी प्रतिनिधित्व करता है। यह भाष्य केवल प्रथम अध्ययन सामायिक पर है। इसमें ३६०३ गाथाएँ हैं।

प्रस्तुत भाष्य में जैनागमसाहित्य में वर्णित जितने भी महत्वपूर्ण विषय हैं, प्रायः उन सभी पर चिन्तन किया गया है। ज्ञानवाद, प्रमाणवाद, आचार, नीति, स्याद्वाद, नयवाद, कर्मवाद पर विशद सामग्री का आकलन-संकलन है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जैन दार्शनिक सिद्धान्तों की तुलना अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ की गई है। इसमें जैन आगमसाहित्य की मान्यताओं का तार्किक दृष्टि से विश्लेषण किया गया है। आगम के गहन रहस्यों को समझने के लिए यह भाष्य बहुत ही उपयोगी है और इसी भाष्य का अनुसरण परवर्ती विज्ञों ने किया है।

आवश्यक पर नाम आदि निक्षेपों से चिन्तन किया गया है। द्रव्य-आवश्यक, आगम और नो-आगम रूप दो प्रकार का है। अधिकाक्षर पाठ के लिये राजपुत्र कुणाल का उदाहरण दिया है। हीनाक्षर पाठ के लिये विद्याधर का उदाहरण दिया है। उभय के लिये बाल का उदाहरण दिया है और आतुर के लिये अतिमात्रा में भोजन और भेषज विपर्यय के उदाहरण दिये हैं। लोकोत्तर नोआगम रूप द्रव्यावश्यक के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये साध्वाभास का दृष्टान्त देकर समझाया है। भाव-आवश्यक भी आगम रूप और नोआगम रूप से दो प्रकार का है। आवश्यक के अर्थ का जो उपयोग रूप परिणाम है वह आगम रूप भाव-आवश्यक है। ज्ञान-क्रिया उभय रूप जो परिणाम हैं, वह नोआगम रूप भाव-आवश्यक है। षडावश्यक के पर्याय और उसके

अर्थाधिकार पर विचार किया गया है।

सामायिक पर चिन्तन करते हुए कहा है- समभाव ही सामायिक का लक्षण है। सभी द्रव्यों का आधार आकाश है, वैसे ही सभी सदगुणों का आधार सामायिक है। सामायिक के दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य ये तीन भेद हैं। किसी महानगर में प्रवेश करने के लिये अनेक द्वार होते हैं, वैसे ही सामायिक अध्ययन के उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय- ये चार द्वार हैं। इन चारों द्वारों का विस्तार से निरूपण किया गया है। आठों कर्म प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थितियों के रहते हुए जीव को सामायिक का लाभ नहीं हो सकता।

कषाय के उदय के कारण दर्शन आदि सामायिक प्राप्त नहीं हो सकती। यदि कदाचित् प्राप्त हो भी गई तो वह पुनः नष्ट हो जाती है। सामायिक में सावद्य योग का त्याग होता है। वह इत्वर और यावत्कथिक के रूप में दो प्रकार की हैं। इत्वर सामायिक अल्पकालीन होती है और यावत्कथिक सामायिक जीवनपर्यन्त के लिये। भाष्यकार ने सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात चारित्र्य का विस्तार से विवेचन किया है।

सामायिक चारित्र्य का उद्देश, निर्देश, निर्गम, क्षेत्र, काल, पुरुष, कारण, प्रत्यय, लक्षण, नय, समवतार, अनुमत, किम्, कतिविध, कस्य, कुत्र, केषु, कथम्, कियच्चिर, कति, सान्तर, अविरहित, भव, आकर्ष, स्पर्शन और निरुक्ति, इन छब्बीस द्वारों से वर्णन किया गया है। सामायिक संबंधी जितनी भी महत्वपूर्ण बातें हैं, वे सभी इन द्वारों में समाविष्ट हो गई हैं। निहववाद पर विस्तार से चर्चा है। अन्त में 'करेमि भन्ते' आदि सामायिक सूत्र के मूल पदों पर विचार किया गया है।

भाष्यसाहित्य में विशेषावश्यकभाष्य का अनूठा स्थान है। विशेषावश्यकभाष्य आचार्य जिनभद्र की अन्तिम रचना है। उन्होंने इस पर स्वोपज्ञवृत्ति भी लिखनी प्रारम्भ की थी, किन्तु पूर्ण होने से पहले ही उनका आयुष्य पूर्ण हो गया था, जिससे वह वृत्ति अपूर्ण ही रह गई। विज्ञों का अभिमत है कि जिनभद्रगणी का उत्तरकाल विक्रम संवत् ६५० से ६६० के आस-पास होना चाहिये।

## चूर्णिसाहित्य

निर्युक्ति और भाष्य की रचना के पश्चात् जैन मनीषियों के अन्तर्मानस में आगमों पर गद्यात्मक व्याख्या साहित्य लिखने की भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने शुद्ध प्राकृत में और संस्कृत मिश्रित प्राकृत में व्याख्याओं की रचना की, जो आज चूर्णिसाहित्य के रूप में विश्रुत है। चूर्णिसाहित्य के निर्माताओं में जिनदासगणी महत्तर का मूर्धन्य स्थान है। उन्होंने सात चूर्णियाँ लिखीं। उसमें आवश्यकसूत्र चूर्ण एक महत्वपूर्ण रचना है।

यह चूर्ण निर्युक्ति के अनुसार लिखी गई है, भाष्य गाथाओं का उपयोग भी यत्र-तत्र हुआ है। मुख्य रूप से भाषा प्राकृत है किन्तु संस्कृत के श्लोक व गद्य पंक्तियाँ भी उद्धृत की गई हैं। भाषा प्रवाहयुक्त है। शैली में लालित्य व ओज है। ऐतिहासिक कथाओं की प्रचुरता है। यह चूर्ण अन्य चूर्णियों से विस्तृत है।

श्रुतज्ञान की दृष्टि से आवश्यक पर निक्षेप दृष्टि से चिन्तन किया गया है। द्रव्यावश्यक और भावावश्यक पर प्रकाश डाला है। महावीर के पूर्वभवों की चर्चा की गई है। महावीर के जीवन में जो भी उपसर्ग आये, उनका सविस्तृत निरूपण चूर्ण में हुआ है। निर्युक्ति की तरह निहववाद का भी निरूपण है। उसके पश्चात् द्रव्य पर्याय, नयदृष्टि से सामायिक के भेद, उसका स्वामी, उसकी प्राप्ति का क्षेत्र, काल, दिशा, सामायिक करने वाला, उसकी प्राप्ति के हेतु, आनन्द, कामदेव का दृष्टान्त, अनुकम्पा, इन्द्रनाग, पुण्यशाल, शिवराजर्षि, गंगदत्त, दशार्णभद्र, इलापुत्र आदि के दृष्टान्त दिये हैं। समभाव की महत्ता का प्रतिपादन करने के लिये दमदत्त एवं मैतार्य का दृष्टान्त दिया है। समास, संक्षेप और अनवद्य के लिये धर्मरुचि व प्रत्याख्यान के लिये तेतलीपुत्र का दृष्टान्त देकर विषय को स्पष्ट किया गया है।

चतुर्थ अध्ययन में प्रतिक्रमण की परिभाषा प्रतिक्रामक, प्रतिक्रमण, प्रतिक्रान्तव्य इन तीन दृष्टियों से की गई है। प्रतिचरणा, परिहरणा, वारणा, निवृत्ति, निन्दा, गर्हा, शुद्धि और आलोचना पर विवेचना करते हुए उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक, अतिचार, ईर्यापथिकी विराधना, प्रकाम शय्या, भिक्षाचर्या, स्वाध्याय आदि में लगने वाले अतिचार, चार विकथा, चार ध्यान, पाँच क्रिया, पाँच कामगुण, पाँच महाव्रत, पाँच समिति आदि का प्रतिपादन किया है। शिक्षा के ग्रहण और आसेवन ये दो भेद किए हैं।

कायोत्सर्ग के प्रशस्त व अप्रशस्त ये दो भेद हैं और फिर उच्छ्रित आदि नौ भेद हैं। श्रुत, सिद्ध की स्तुति पर प्रकाश डालकर क्षामणा की विधि पर विचार किया है। अन्त में कायोत्सर्ग के दोष, फल आदि पर भी प्रकाश डाला गया है।

आवश्यकचूर्ण जिनदासगणी महत्तर की एक महनीय कृति है। आवश्यकनिर्युक्ति में आये हुए सभी विषयों पर चूर्ण में विस्तार के साथ स्पष्टता की गई है। इसमें अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन उद्दृष्टि किये गये हैं, जिनका ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है।

## टीका साहित्य

निर्युक्ति में आगमों के शब्द की व्युत्पत्ति और व्याख्या है। भाष्यसाहित्य में विस्तार से आगमों के गंभीर भावों का विवचेन है। चूर्णसाहित्य में निगूढ़ भावों को लोक-कथाओं के आधार से समझाने का प्रयास है तो टीका साहित्य में आगमों का दार्शनिक दृष्टि से विश्लेषण है। टीकाकारों ने प्राचीन निर्युक्ति, भाष्य और चूर्ण साहित्य का तो अपनी टीकाओं में प्रयोग किया ही है साथ ही नये-नये हेतुओं द्वारा विषय को और अधिक पुष्ट बनाया है। उनकी प्रस्तुत टीका उनके पश्चात् कोट्याचार्य ने पूर्ण की। इसका संकेत कोट्याचार्य ने छठे गणधरवाद के अन्त में दिया है।

संस्कृत टीकाकारों में आचार्य हरिभद्र का नाम गौरव के साथ लिया जा सकता है। उनका सत्ता-समय विक्रम संवत् ७५७ से ८२७ का है। उन्होंने आवश्यकनिर्युक्ति पर भी वृत्ति लिखी। प्रस्तुत वृत्ति को देखकर विज्ञों ने यह अनुमान किया है कि आचार्य हरिभद्र ने आवश्यक सूत्र पर दो वृत्तियाँ लिखी थीं। वर्तमान

में जो टीका उपलब्ध नहीं है, वह टीका उपलब्ध टीका से बड़ी थी। क्योंकि आचार्य ने स्वयं लिखा है- 'व्यासार्थस्तु विशेषविवरणादवगन्तव्य इति।' अन्वेषणा करने पर भी यह टीका अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

सामायिक आदि के तेबीस द्वारों का विवेचन निर्युक्ति के अनुसार किया गया है। निर्युक्ति और चूर्णि में जिन विषयों का संक्षेप में संकेत किया गया है उन्हीं का इसमें विस्तार किया गया है। ध्यान के प्रसंग में ध्यानशतक की समस्त गाथाओं का भी विवेचन किया है। इस वृत्ति का नाम शिष्यसहिता है। इसका ग्रन्थमान २२००० श्लोकप्रमाण है। लेखक ने अन्त में अपना संक्षेप में परिचय भी दिया है।

कोट्याचार्य ने आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण के अपूर्ण स्वोपज्ञ भाष्य को पूर्ण किया और विशेषावश्यक भाष्य पर एक नवीन वृत्ति लिखी। मलधारी आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी विशेषावश्यकभाष्यवृत्ति में कोट्याचार्य का प्राचीन टीकाकार के रूप में उल्लेख किया है। आचार्य मलयगिरि उत्कृष्ट प्रतिभा के धनी मूर्धन्य मनीषी थे। आवश्यकसूत्र पर भी उन्होंने आवश्यकविवरण नामक वृत्ति लिखी। यह विवरण मूल सूत्र पर न होकर आवश्यकनिर्युक्ति पर है। यह विवरण अपूर्ण ही प्राप्त हुआ है। इसमें मंगल आदि पर विस्तार से विवेचन और उसकी उपयोगिता पर चिन्तन किया गया है। निर्युक्ति की गाथाओं पर सरल और सुबोध शैली में विवेचन है। विवेचन की विशिष्टता है कि आचार्य ने विशेषावश्यकभाष्य की गाथाओं पर स्वतंत्र विवेचन न कर उनका सार अपनी वृत्ति में उद्धृत कर दिया है। वृत्ति में जितनी भी गाथाएँ आई हैं, वे वृत्ति के वक्तव्य को पुष्ट करती हैं। वृत्ति में विशेषावश्यकभाष्य की स्वोपज्ञवृत्ति का भी उल्लेख हुआ है। साथ ही प्रज्ञाकरगुप्त, आवश्यक चूर्णिकार, आवश्यक मूल टीकाकार, आवश्यक मूल भाष्यकार, लघीयस्त्रयालंकार, अकलंक-न्यायावतार वृत्तिकार प्रभृति का भी उल्लेख हुआ है। यत्र-तत्र विषय को स्पष्ट करने के लिए कथाएँ भी उद्धृत की गई हैं।

मलधारी आचार्य हेमचन्द्र महान् प्रतिभासम्पन्न और आगमों के ज्ञाता थे। वे प्रवचनपटु और वाग्मी थे। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। आवश्यकवृत्ति प्रदेशव्याख्या आचार्य हरिभद्र की वृत्ति पर लिखी गई है, इसलिए उसका अपर नाम हारिभद्रीयावश्यक वृत्तिटिप्पणक है। मलधारी आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य ने प्रदेश-व्याख्याटिप्पण भी लिखा है।

आचार्य मलधारी हेमचन्द्र की विशेषावश्यक भाष्य पर दूसरी वृत्ति शिष्यहिता है। यह बृहत्तम कृति है। आचार्य ने भाष्य में जितने भी विषय आये हैं, उन सभी विषयों को बहुत ही सरल और सुगम दृष्टि से समझाने का प्रयास किया है। दार्शनिक चर्चाओं का प्राधान्य होने पर भी शैली में काठिन्य नहीं है। यह इसकी महान् विशेषता है।

अन्य अनेक मनीषियों ने भी आवश्यकसूत्र पर वृत्तियाँ लिखी हैं। संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है- जिनभट्ट, माणिक्यशेखर, कुलप्रभ, राजवल्लभ आदि ने आवश्यक सूत्र पर वृत्तियों का निर्माण किया है।

इनके अतिरिक्त विक्रम संवत् ११२२ में नमि साधु ने, संवत् १२२२ में श्री चन्द्रसूरि ने, संवत् १४४० में श्री ज्ञानसागर ने, संवत् १५०० में धीर सुन्दर ने, संवत् १५४० में, शुभवर्द्धनगिरि ने, संवत् १६९७ में हितरुचि ने तथा सन् १९५८ में पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज ने भी आवश्यकसूत्र पर वृत्ति का निर्माण कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

टीका युग समाप्त होने के पश्चात् जनसाधारण के लिये आगमों के शब्दार्थ करने वाली संक्षिप्त टीकाएँ बनाई गई जो स्तबक या टब्बा के नाम से विश्रुत हैं और वे लोकभाषाओं में सरल और सुबोध शैली में लिखी गई। धर्मसिंह मुनि ने १८वीं शताब्दी में २७ आगमों पर बालावबोध टब्बे लिखे थे। उनके टब्बे मूलस्पर्शी अर्थ को स्पष्ट करने वाले हैं। उन्होंने आवश्यक पर भी टब्बा लिखा था।

टब्बों के पश्चात् अनुवाद युग का प्रारम्भ हुआ। मुख्य रूप से आगम साहित्य का अनुवाद तीन भाषाओं में उपलब्ध है- अंग्रेजी, गुजराती और हिन्दी। आवश्यक सूत्र का अंग्रेजी अनुवाद नहीं हुआ है, गुजराती और हिन्दी में ही अनुवाद हुआ है। शोधप्रधान युग में आवश्यक सूत्र पर पंडित सुखलाल जी सिंघवी तथा उपाध्याय अमरमुनि जी प्रभृति विज्ञों ने विषय का विश्लेषण करने के लिये हिन्दी में शोध निबन्ध भी प्रकाशित किये हैं।

(आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर से प्रकाशित आवश्यकसूत्र की भूमिका से उद्धृत)

